आकाश गंगा

प्रकाशक :
भालोटिया फाऊन्डेशन
३, न्यू रोड
कलकत्ता-७०००२७

आवरण चित्र
मंजु नाहटा

मूल्य : एक सौ रुपया

मुद्रक :
सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स
२०५, रवीन्द्र सरणी,
कलकत्ता-७



कन्हैयालाल सेठिया

चिन्त्य-अचिन्त्य

स्रष्टा है वह शब्द—जिसमें प्रतिध्वनित होते हैं शिल्प, लालित्य, पटुता, स्पन्दन, चेतना, मर्म और प्राण के समवेत सात स्वर। सम्पूर्ण तत्वों के समीचीन-समावेश का सर्वांगीण उत्तरदायित्व जो सांगोपांग निभा सके वही है सर्जक—रचयिता।

इस रचना-जगत् के विभिन्न आयामों में विशिष्ट स्थान है—साहित्य सर्जक का। वर्णमाला के वैविध्य एवं अक्षर-ब्रह्म की अननुभूत गरिमा को स्वसंवेद्य, अनुभूति द्वारा नित्य नवीन अलंकरणों से मंजित कर, अपनी सहज रागानुराग वृत्ति से उसमें प्राण फूँकने वाली मनीषा का यह सृष्टिजगत् भी है उसी महिमामयी सृजन की गौरवशाली परम्परा का अविच्छेद्य अंग।

नश्वर देहबद्धता की अविनश्वर विराट चेतना से सन्नद्धता का सेतु है रचनाकार! मानव प्रज्ञा की चौखट पर पड़े मात्र व्यक्तिगत चिन्तन के मृत्तिका-दीप में समष्टिगत मुक्तचेता लौ को प्रज्ज्वलित करता है सरस्वती का वरद पुत्र ही। महाकवि कन्हैयालाल सेठिया हैं आत्मप्रकर्ष की वैसी ही दीपशिखा।

परम्परा के सतत प्रवाह से संस्पर्शित रह कर भी महामनीषी सेठियाजी ने अपने प्रवाल द्वीप वत् तटस्थ व्यक्तित्व से चिन्तन की लहरियों को रूढ़ियों के आवर्त में आबद्ध नहीं होने दिया है। संशय की शृंखला और निश्चय की बेड़ी को काट कर मानवीय संवेगों का उदात्तीकरण किया है। मुक्ति और बन्धन को सनातन सत्य मानकर सहजता से स्वीकार किया है।

महाकवि सेठिया ने सगुण साधनों से साध लिया है निर्गुण को, चिन्तन की ऊर्जा से प्रताड़ित किया है चिन्ता की मूर्च्छा को, मृण्मय मन को चिन्मय बनाया है चित् चैतन्य से, समग्र का दर्शन किया है अंश के माध्यम से, धूम्र को कज्जल बनाया है अपने स्नेह के संबल से और कविता विहग के लिये निर्मित किया है कला का नीड़ अपनी लेखनी से।

सेठिया-काव्य की मूल शक्ति है शाश्वत तत्वों का मौलिक-चिन्तन

जो स्वयं में समेटे हुए हैं उदधि के अतल-तल का गाम्भीर्य और सागर का ओर-छोर विहीन विस्तार।

मनीषी कवि सेठिया स्वाप्निक सौन्दर्य के उपासक नहीं अपितु पक्षधर हैं ठोस यथार्थ की धरित्री को अपनी प्राण शक्ति से सिंचित कर उसे पल्लवित-पुष्पित करने के।

मानव मन के उतराव-चढाव का जैसा प्रामाणिक परन्तु अछूता, सहज किन्तु आध्यात्मपूत चित्रण कवि सेठिया ने किया है वह उनके प्रौढ-चिन्तन एवं आन्तरिक आत्मीयता का परिचायक है।

कवि का काव्य पत्थरों पर उत्कीर्ण स्थापत्य कला का बेजोड नमूना न होकर, नवनीत कोमल हृत्पटल पर अविरत क्षरित होने वाली वह नेह-नीर-धार है जो भावी पीढियों तक इस संवेदना-स्नेह को पिघलने नहीं देगी।

यही वामन में विराट को अनुभूत करने की भूमिका है कवि के काव्य-जगत की सार्थक, सशक्त, ससन्दर्भ, समय जा मुखर है स्वय में।

दिनांक : २ अक्टूबर, १९९०   राधा भालोटिया

सत्य !

सृष्टि अनादि है या सादि यह विवादास्पद है पर मेरे मानस की आकाश गंगा का अवतरण क्षण का सत्य है। एक किसी प्रत्यूष के हिरण्य पुरुष की मध्याह्न तक की यात्रा इस सृजन की कालावधि है। अवश्य कतिपय रचनाओं का प्रसवन किंचित अन्तराल से हुआ है अन्यथा यह कृति एक अभंग भाव समाधि की सहज निष्पत्ति है।

कलकत्ता
२१-७-६०

कन्हैयालाल सेठिया

विष्णु-चक्र

कौस्तुभ	श्रीवत्स

कौस्तुभ	श्रीवत्स

तनय
जय, विनय
तनय वधू
कनक, पुष्पा
को

आकाश गंगा !

बहकर
तिमिर के
प्राण-प्रदेश में
हो जाती विलुप्त
ज्योति सलिला
आकाश गंगा
दिवस के मरुस्थल में
पर
सुनकर
उस अन्तः प्रवाहिनी का
कल कल
निनाद
रचता
ऋषि सूर्य
रश्मियों की ऋचाएं
उद्भाषित जिनसे
वेद रूप आकाश !

हस्ताक्षर !

बादल की पाती
बूँदों के अक्षर,
अम्बर ने भेजी
धरती को लिखकर,
सम्बोधन इन्द्र धनुष
बिजली हस्ताक्षर !

अनिरुद्ध रुद्ध !

जब तक है
शाखाओं में
मूल का सत्य
होती रहेगी उनकी
हरितिमा
पल्लवित, पुष्पित, फलित,
छूटते ही
चेतना का सम्पर्क
बन जायेगा ठूंठ
अस्तित्व का झूठ !
जानकर जिसे
उड़ जायेगा
भूखा विहंग
निक्षेप कर एक अवहेलना की दृष्टि !

उपमा !

रिक्त नीड
विरहिन की
आँख !

विदेह !

कब से
उत्कीर्ण कर रहा हूँ
शब्दों के शिलाखंडों में
भावनाओं की प्रतिमाएँ
पर नहीं उकेर पाया अब तक
उस क्वांरे सपन की
छवि
जिसे देखा था जागते में !

प्रेरक !

ओ मौन अरण्य !
कैसे रख देते
कोयल के कंठ में तुम
पंचम का संगीत
कि प्रतिध्वनित क्षितिज
होकर नमित
छूता तुम्हारे चरण
भूल कर
पिता
आकाश की
अनन्तता !

परिणति !

दृष्टि
वर्तिका,
रूप
चिन्गारी,
निःशेष स्नेह
निष्पत्ति
वासना
कज्जल !

कीट भृंग !

संवेदना की
अमर वल्लिका
कुसुमित सुमन
मेरा गीत
बन जाता जिसकी
सुरभि से
प्राण
महा प्राण !

समन्वय !

गाता
समीर बीन पर सिन्धु
बादल राग,
करती नृत्य
तन्वंगी दामिनी,
भींग उठती
रस से
धरती कामिनी !

कालजयी कृति !

विभाजित
शाखाओं
कलियों
सुमनों
फलों के
सर्गों में
महाकाव्य विटप,
नायक
बीज
नायिका भूमि !

अबन्धु-बन्धु !

आ गया
अपने से कितनी दूर
मरीचिका के पीछे !
भूल गया
प्राण का अमृत कुण्ड
जहाँ पी सकती थी
झुक कर चेतना,
भ्रान्त, दिशाहारा
कैसे लौटूं पुन: मृगवन में ?
मिट गये
वासना की झंझा में
पदांकित चरण चिन्ह
अब तो प्रतीक्षा है
अबन्धु अन्धकार को
जय देगा मुझे
दिशा बोध
तुम्हारी कुटिया का
स्नेहालोकित
अकिंचन दीप !

असत् सत् !

भूमिका
दीप्ति की
धूम,
उपसंहार
कीचड़ का
कमल !

माया ठगिनी !

देख जलद कारे
बैठी पनिहारिन
रीती कर गागर,

बूंद नहीं बरसी
लौट गये निष्ठुर
द्वारे तक आकर,

छलना थी आशा
प्राण रहा प्यासा
आकुल मन मारे,

गहन हुई पीड़ा
ढरकाते आँसू
लोचन रतनारे !

संपोषण !

मिलते ही
उर्वरक तिमिर
फूटते
ज्योति के अकुर
नक्षत्र !

द्वैताद्वैत !

अभिव्यक्ति
दिवस की
जला हुआ दीप,

अनुभूति
निशा की
बुझा हुआ दीप,

स्मृति द्वैत
विस्मृति अद्वैत !

निरवधि

नहीं होता
प्रार्थना का
कोई समय
अप्रमत्त का
हर क्षण
प्रार्थनामय ।

वियोग-संयोग !

टेर रहा
नंगी पतझरी
मांझ में
एकाकी वनपाखी
कोई विरह गीत,
भर जाता सुन जिसे
एक अज्ञात आशंका से
क्षितिज से लौटते
पंछी का मन
पर जाग उठती
प्राण में पुलकन
उस क्षण
जब सहमा
मिल जाते
नीड में बैठी
आसन्न प्रसवा
नयन !

अप्प दीपो भव !

पड़े हैं
तथाकथित सत्य के
पथ पर
खंडित विश्वासों के
असंख्य टुकड़े,
श्रद्धा के आँसुओं की
फिसलन भरी कीच,
दुराग्रह के नुकीले
अवरोधक शूल,
चाहते
अगर पहुँचना
लक्ष्य पर
रचनी होगी
अपने चरणों की
गति से
एक कुँआरी पगडण्डी
अन्यथा
रह जाओगे
बन कर
मात्र दुर्घटना
इस अन्धी भीड़ से भरे
धोखे के
राजपथ पर ।

प्रश्न !

संलग्न
क्षण से
अशेष चिरन्तन,

सपृक्त
द्वार से
विस्तृत आंगन,

बाधे
नागफणी
गुलाब का वन,

बिना किये
पार
कुंठाएं
कैसे होगा अनुभूत
सत्यम्
शिवम्
सुन्दरम् !

गति-प्रगति !

धरते ही
प्रथम सोपान पर
चरण
अनुभव होगी
शृंग की
समीपता !

अवगुण-गुण !

बिना छिद्र
नहीं बन पाता
मिट्टी का नाद।

दृष्टि भेद !

ढलते रवि को देख
सुमन का मन मुरझा जाता है,
वन श्री का शृंगार लूटने
तिमिर दस्यु आता है,

उगते रवि को देख
दीप का प्राण पुलक जाता है,
हुई तपस्या सफल स्वयं
निर्वाण चला आता है,

भाग त्याग की दृष्टि भिन्न है
भिन्न घटित का चिन्तन,
प्रेयस् श्रेयस् से अनुबन्धित
राग अराग चिरन्तन ।

सार्थकता ।

जिओ
आगत का
इस तरह
कि नहीं बने वह
गत का
इतिहास
रहे
जीवन्त
बनकर
अनागत का
दर्शन ।

नियति !

देता
शूल फूल
दोनों को विटप
चेतना का रस,
बनता
कर्म विपाक के
अनुसार
चुभन या सौरभ।

मुँह-मुँह !

एक दिन में
सात सौ
आठ का गणित,
मुँह का मुखड़ा !

बैसाखी !

छूट जाता
जब
लिखते समय
किसी कालजयी कृति की
महत्वपूर्ण पंक्ति का
एक अर्थपूर्ण शब्द
तो लगड़ा जाता
समग्र कृतित्व का
सत्य,
चाहिये उसे फिर
अन्वेषित करने के लिये
किसी मनीषी की
अनुभूति की बैसाखी !

सहज समाधि !

लगाती
व्यर्थ
फेरे
मन चली
तितली,

बिना किए
अनुभूत
सुरभि का सत्य
नहीं खोलेगी
आंख
कली।

असंभव संभव !

नहीं कर
सकता
जहाँ जाने का
साहस
राजपथ
वहाँ
जाती
दुर्बल पगडंडी !

प्रकृति-पुरुष !

हिम कन्या
उतरी
छोड़ शिखर
अनुनादित करती
वन-प्रान्तर,
चलता
तरंग मिस
चिर चिन्तन,
क्या लवणोदधि में
आकर्षण !
ये हरे भरे
कांतार, विजन
झरते विटपों से
कलित सुमन,
खग गाते
करते मधुवर्षण,
चरते दूर्वा
हेमाभ-हिरण !
जुड़ जाते इनको देख
नयन,
अति सुन्दर रे
यह छवि शोभन,
पर गर्जित पौरुष का
आमन्त्रण
सुन होता
सरि का मन
उन्मन,

कर देती
उस क्षण
वह अर्पण
अपने यौवन का
संचित धन,
यह प्रकृति-पुरुष का
सहज मिलन
हो जाता जीवन
धन्य, उऋण !

रूपान्तर !

प्रतिमा
बनने से
पहले भी था
पत्थर का
अपना आकार,
तभी हो पाया
उसमें
शिल्पी का स्वप्न
छेनी का सत्य
साकार !

सृजन का सत्य !

आवश्यक है
क्रान्ति के लिये
हृदय की शान्ति,
अन्यथा
केवल भ्रान्ति
विचारों की
ऊहापोह !

पुरुषार्थ !

चाहते
अगर तैरना
सिन्धु,
छोड़ना होगा
कूल का मोह,
करना होगा
द्रोह
उन परम्पराओं से
जो देती हैं
अनुभव की
अपेक्षा
सुरक्षा को प्राथमिकता ।

स्वभाव !

नहीं कर
पाता
सागर को मीठा
सरिताओं का समर्पण,
कर सकता
प्रचण्ड सूर्य
उसे विवश
रचने के लिये
पीयूष वर्षी मेघ !

अक्षमता !

बहता
प्रवाह में
असहाय तृण
संताप कर
अपनी
अन्धी-गति पर !

आत्म विश्वास !

जननी
चट्टान की अंक में
मचलता शिशु निर्झर
भरता निशंक
शून्य में छलांग
क्यों कि
नीचे है
धात्री धरित्री !

व्याकरण !

दीप शिखा
तिमिर आलेख के
समक्ष
विराम !

आभास !

भोर
एक चुटकी
कपूर,

सांझ
एक चुटकी
कस्तूरी !

अज्ञान !

मान लेता
भ्रमित मन
हर मृत्यु को
असीम काल की सीमा,
वह है
पानी में खिंची लकीर
कर लेता जिसे
पलक झंपते
अपने में लीन
अनन्त प्रवाह !

संस्कार !

रिक्त पात्र में
भी
रह जाता
पूर्णता का चिन्ह !

विकास की यात्रा !

बिना दरके
धरती के
स्नेहांचल में
नहीं खोलेंगे
शिशु बीज
प्रकाश की
चकाचौंध में आँख !

विराम-अविराम !

बीतते ही
युद्ध विराम का
क्षण
फूंकेगा
समय का कृष्ण
सूर्य का पांचजन्य
हो उठेगा
फिर जीवन्त
जीवन का कुरुक्षेत्र !

व्यवस्था !

भर दिये
सिन्धु ने
जलद घट
अम्बर के
पनघट पर,
ले आयेगी
पवन पनिहारिन
इन्हें
धरती के घर ।

कुण्ठा मुक्ति !

मन की
कोमल अनुभूति की
अभिव्यक्ति का
माध्यम
कठोर शिलाखंड,
कर सकता
अवरोध को
तोड़कर
जीवन शिल्पी
आराध्य का दर्शन !

स्वभाव !

खोजता
प्रकाश भी छिद्र
करने
आलोकित
अन्धकार का
अंतस्तल !

बन्धु भाव !

देखता हूँ
जब भी कोई
एकाकी विटप
ललक उठता
उसे बाह में
भरने
मेरे भीतर का
अरण्य !

आश्वासन !

नहीं रहेगा
अवशेष
मेरे पात्र में
तुम्हारा कोई देय !
लौटा दूँगा
वितरित कर
हाथों हाथ
इससे पहले कि
थके
तुम्हारी प्रतीक्षा !

स्थानान्तरण !

थी जो
अर्गला
मन में
वह लग गई
अब द्वार पर,
रहेगी
प्रतिक्षण
चिंतन में
जाते समय
बाहर भीतर !

उपयोग !

पीड़ा
मेरी कामधेनु,
दुहता गीत दूध
जब भी सताती
चेतना को
भव तृषा !

विस्मृत 'स्व' !

जुड़ जाता
स्थितियों से मन,
उखड़ जाता
स्थितियों से मन,
मानता
स्थितियों को
सत्य
जबकि वह
अपने में
निरंजन !

काल बोध !

समझ गया
क्षण का मूल्य,
नहीं करूँगा उसे
विक्रय
अब
बधिक प्रमाद के हाथ !

केवल ज्ञान !

नही
बुद्धि की
प्रतिक्रिया
कैवल्य
वह क्रिया
प्रज्ञा की ।

मिथ्याभिमान !

राजसूय यज्ञ के
छुटे अश्व सा
अबाध मन
घूम आया
चतुर्दिक
नहीं पकड़ी
किसी ने वल्गा,
खूंदता
पैरों तले की धरती,
हिनहिनाता
प्राण का दर्प
सहसा
पड़ गई म्लान
देह की द्युति,
झरने लगे
मुख से झाग,
कर गया दंशित
हृदय विवर में
छिपा
संशय सर्प,
जब नहीं
थपथपाई
हयशाला की
स्वामिनी
चेतना ने
अन्धे अहम की पीठ !

सर्वहारा !

आने को है
अंतिम पडाव
जहाँ
छोडना होगा
शब्द का पाथेय !

प्रकृतिस्थ !

खड़ा है
घेर कर
दीप की लौ
अन्धकार
नहीं कर पाता
बलात्कार
क्यों कि
जानता है
वह मर्यादा ।

अकिंचन !

आया था
जैसे
निर्भार
पहुँचूँगा
वैसे ही
तुम्हारे द्वार,
नहीं लेनी
पड़ेगी
मेरी नंगा कोरी !

स्वानुभूति !

मत कतर
श्रद्धा की कैंची से
जिज्ञासा के पंख,
नहीं होगा
अनुभूत
बिना भरे उड़ान
आँखों में
प्रतिबिम्बित
महाकाश !

संजीवनी संवेदना !

टूट गया
आपा धापी में
आकंठ भरा
अमृत का कुंभ,
उगल दिया
कुपित शिव ने
पिया हुआ गरल,
अब कहाँ मन्दराचल !
विवर गत शेष नाग
नहीं झेलने को प्रस्तुत
दुबारा मंथन की पीड़ा
विक्षुब्ध पारावार,
अब तो बचा सकता
विदग्ध विश्व को वह
जो नकार सके
सिंहासन के लिये तलवार
ठुकरा सके
अदम्य वासना की मनुहार
करुणा का अवतार
संवेदना का राजकुमार
कोई प्रबुद्ध बुद्ध !

अनासक्त !

पथ के
लिये गौण है
गमन
आगमन
वह है
केवल
गति का साक्षी ।

निरपेक्ष !

साक्षी
सत्य का
केवल सत्य
नहीं
उसे
किसी सन्दर्भ की
अपेक्षा !

संकल्प !

किया
सृजित
कुम्भकार ने
आज
और एक दीप,
नहीं टूटने देगा वह
ज्योति की शृंखला
पकड़ जिसे
चढ़ जायेगा फिर
फिसल कर गिरा
सूरज
आकाश की मुंडेर पर ।

कायर !

लिखी
डुबा स्नेह में
नन्हे दीप ने
लौ की कलम
पिता सूरज को पाती,
फट गई
सुन कर
उषा की लालिमा मिस
बेचारी कालिमा की छाती !

संकल्प !

क्रिया
सृजित
कुम्भकार ने
आज
और एक दीप,
नहीं टूटने देगा वह
ज्योति की शृंखला
पकड़ जिसे
चढ़ जायेगा फिर
फिसल कर गिरा
सूरज
आकाश की मुंडेर पर ।

कायर !

लिखी
डुबा स्नेह में
नन्हे दीप ने
लौ की कलम
पिता सूरज को पाती,
फट गई
सुन कर
उषा की लालिमा मिस
बेचारी कालिमा की छाती !

कृतज्ञता !

बैठ गई जब
मार कुण्डली
मावस नागिन
घात में,
तो सूरज की
आँख बन गया
दीप अकेला
रात में,

सहम, बच गई
दृष्टि पथिक की
महाकाल के
दश से,
उऋण नहीं
हो सकता जीवन
कभी विभा के
वश से !

मूर्धन्य !

हर आकार के
सिर पर है
निराकार का वरदहस्त,

हर सृजन से
जुड़ी है
अलख काल की भूमिका,

हर विकास
चलता है
थाम कर प्रकाश की अंगुली,

हर प्राण की
धड़कन है
महाप्राण समीर,

पर सबसे बड़ी
पैरों तले पड़ी
धरती
अचित्य है
बिना जिसके
अस्तित्व की कल्पना !

शुद्ध कविता !

आज लगा कि
बहुत समीप आ गया
घर के सामने का पेड,
क्या हुआ है कोई
मेरी धुधली दृष्टि को धोखा ?
या बैठा हूँ कुर्सी पर
किसी नये कोण से ?
स्पष्ट दिखती है
हवा से खेलती
नन्हीं कोपलें,
चटक रंगों में से झाकती
अधखिली कलियां,
नीडों में बैठे
ममत्वपूर्ण नयन,
सहसा टूट गई
बिल्ली की म्याऊ से मेरी तन्द्रा
लगा कि खडा है
सदा की दूरी पर ही वह पेड
हो गई है केवल
अब और अधिक गहरी
उसके साथ मेरी संवेदना !

मोहासक्त !

खिल कर
झर जाता
कितनी सहजता से
हरसिंगार !
कहाँ
गुलाब में
यह असंग भाव !

नहीं होता
राग मुक्त
मुरझाने तक !

प्रतिक्रिया !

भने ही
गुदला देता
क्षण भर के लिये
कोलाहल
सन्नाटे को
पर दूसरे ही क्षण
कर लेता वह
आत्महत्या
कूद कर
उसके गहन अतल में ।

अवशेष !

खुलते
भोर की
आंख
झर जाते
सपनों के हरसिंगार
रह जाती
गगन के मन में
केवल
स्मृतियों की
बासी गन्ध ।

पुण्योदय !

हुआ
कितने वर्षों बाद
पुष्पित
गमले का
गाछ,
शायद
यह कोई गौतम
आया है अब
जिसके तपःपूत प्राण में
पी कर
किसी सुजाता मालिन के
हाथ से संवेदना का नीर
बोधि का क्षण !

रिक्त-पूर्ण !

झर गया
समय की
डाल से अंधेरे का
तारामुखी फूल,
लगता
दृष्टि को
दिवस सा
रिक्त वृन्त !

जिज्ञासा !

कहाँ है
विचार का
उत्स ?
नहीं
केवल
दृश्य वातावरण
अन्यथा
कैसे करता
अनुभूत
सूरदास
जीवन का
रूपात्मक सौन्दर्य ?

गति-स्थिति !

पहुँच कर
सिन्धु के समीप
हो गयी
संयत
उच्छृंखल नदी,
कर लेता
स्व में समाहित
आराध्य
समर्पिता की गति !

शिशु-मन !

समय के
गरुड़ का अण्डा
दिन,
काली चितकबरी
बकरियों का
झुन्ड
रात,
हो उठता
इन कल्पनाओं के बहाने
जीवन्त,
नटखट बचपन
जब
गवई सत्य था
जीवन का दर्शन ।

विमूर्च्छा !

खड़ी
ठगी मृगी सी
तारक सुमनों से सुरभित
अस्ताचल की घाटी में
शरद पूनम की साँझ,
भूल कर
काल अहेरी का
जो आ रहा
दबे पाँव
लेकर
उदयाचल की ओट !

प्रक्रिया !

जुड़ा है
किसलयों
कलिया
काटों से
बीज का
फल बनने का
क्रम,
नहीं कर सकेगा कोई
सृजन की
प्रक्रिया में
बदलाव
करना होगा
हृदयगम
यह सत्य
अन्यथा
छलता रहेगा
उपलब्धि का क्षण !

चिंत्य !

कर लिया
खड़ा
जड़ शब्दों का
हिमालय
प्राण की चेतना पर,
नहीं हुई
निसृत
स्वानुभूति की गगा
मिला देती जो
उस सिन्धु से
रचती है जिसकी
उद्वेलित सवेदना
शून्य में
तृषित धरती के लिये
पीयूष वर्षी मेघ !

भाग्यवती !

गई
अभी अभी
बीन कर मालिन
गजरे के लिए
कलिया
रही अनदेखी जो
सज गई उनसे
सुन्दरी सांझ की
कबरी ।

आत्मधर्मा !

दो
लौ को
कोई दिशा
होगी
विभासित
उमसे निशा,
हुई
दीप से
बद्ध कब
विभा !
पहुँचती
हर नयन
रश्मिपदा प्रभा !

पात्रता !

ठुकरा दिया
दुर्योधन ने
संधि प्रस्ताव
क्या कि
विमूर्च्छित था
हृदय का
भागवत अंश,
हो गया
सन्नद्ध
युद्धार्थ
भीत पार्थ
क्या कि
जाग गया था
निद्रित
गीता तत्व !

प्रमत्त !

सहसा आये घिर
नवजात शिशु शरद के
नयनों में
सावनी मेघ
बरसने लगे
धारा सम्पात,
ठिठक गये
दक्षिणायन मुखी
दिवाकर के रथ के
सप्त अश्व,
पंकियाये धुले पथ
विसूरती उष्मित हिमानी
गदलाया नदियों का मन,
सहम गई
सद्य प्रसवा धरती
नहीं भाया प्रकृति को
पुरुष का यह
प्रणयोन्माद
कजलाई
मरकती हरितिमा,
संवलाई
चटक रंगों से सजी
अरण्यानी
हो गये मौन
चहकते नीड़
सिमटे फैले पंख,
मुँह कर गई

अनुभूत
विप्रलम्भा
प्रतीक्षा का सुख।

छोटे दिन !

छिले
सिंघाड़े से
कच्चे
ये
शीत के दिन
बिक जाते
हाथों हाथ,
चला जाता
असमय में
समय
ठेलता हुआ
रात का खाली ठेला
बिखरी हुई
जिसमें
तारों की रेजगारियां !

प्रवंचना !

निहार कर
दर्पण
बन जाती
उत्कंठा
बन्धन,
करता
बाल हठ
मन
देखने
अवगुण्ठन,
चला जाता
अनदेखा
इस व्यामोह में
दर्शन का
क्षण !

असंग-संग !

शुद्ध
सन्दर्भ हीन
महाशून्य से
सृष्टि का सन्दर्भ,
होकर
अस्थित में स्थित
बरसता
पुरुष का
पुंसत्व मेघ
करती
धारण
प्रकृति गर्भ
होती प्रतीति तब
उद्भव का
कारण
अकारण !

अनुभूति !

बीनी
सूरज ने
बादल की
डलिया में
वारिधि की
बगिया से
बूंदों की कलियां,
शरमाता अम्बर
अंजलि में भरकर
कण कण
सगुण हुई
माटी निरगुणिया।

भ्रान्त !

मडराते
गन्ध विह्वल मधुप
पारिजात पुष्पाच्छादित
कालकूट के हेमकुम्भ पर
विस्मृत कर
चेतना सुमेरु से
निसृत
सुधा मन्दाकिनी
सींचती जो
अहर्निश
प्राण का
नैसर्गिक नन्दन !

परिभाषा !

नहीं लगती
जिस
सत्य की आँच
सो जाते
उसके अधर
कहते जिसे
चेतना की भाषा में
मौन ।

उत्कलिका !

खड़ा
शुष्क सरिता के
तट पर
पुकार रहा
कामान्ध पाराशर
ओ मत्स्यगन्धा
पार कर
नाव खे कर !

भेद विज्ञान !

ज्वलन
क्षण
का
अनन्त भ्रमण
स्फुरण
आत्म दर्शन ।

उत्कर्ष !

खिल कर
दीप की लौ
बन
जाती
सवेरे का फूल !

मुरझा कर
मंझधार की लहर
बन जाती
सागर का फूल !

एकोऽहम् बहुस्यामः।

चूसते
शिशु
मा का स्तन,
पीते
फल
पादप का रस,
नहीं वहां
देह का द्वैत
केवल
पूर्णत्व में
व्यक्त
आत्मा का
अद्वैत!

विभ्रम !

अम्बर सर में
खिला
कनक का
कमल दिवाकर,

पी उड़ता रस
नित्य
तिमिर का
लोलुप मधुकर

शाश्वत यह
व्यापार
प्रणय का
साक्षी तारे,

दिवा निशा का
भ्रम
पाले हैं
दृग बेचारे !

मंत्र !

झकझोरने में
चेतना को
अधिक सक्षम है
सार्थक शब्द की अपेक्षा
निरर्थक ध्वनि,
नहीं होता
उद्वेलित नीर
हृदय में पड़ी
अमूल्य मणि मुक्ताओं से
चाहिये उसे
मूल्यहीन पाषाण !

मांग-पत्र !

चाहिये
जीवित रहने के लिये
चिनगारी को
स्नेह ईंधन का
या
कुछ घास-फूस,
दूसरा
स्मरण कर के
उसकी पीड़ा के
राग लिखूँ,
पर मरण को
पीड़ित
कायर
दुखी हैं
विदूषक।

बोधि !

क्या है
भाव से
विचार
विचार से
शब्द बनने की
प्रक्रिया ?
अक्षम
जानने में
विज्ञान की आंख
खोलेगा पांख
रहस्य की
अतः बोध के
आकाश में
चेतना का हंस !

वामन-विराट !

कर देती
जर्जरित
तिमिर का
इस्पाती कवच
दीप की
नन्ही किरण,

दे देती
चिर परिचित
वातावरण को
नया अर्थ
फूल की
हलकी महक !

बना देती
मंजिल की
दूरी को
वामन
गीत की
एकाध कड़ी !

धाता !

बैठा
सिरहाने
सम्राट दुर्योधन,
पैताने
सर्वहारा अर्जुन,
काम्य थी
उसे
केवल
दृष्टि।

श्रेयस् !

अतिक्रमण !
समीक्षा
प्रतिक्रमण
करता
क्षण क्षण
वह
श्रमण,
होती चेतना
निरावरण,
छुटते
मरण
थमता
भव भ्रमण,
सहज
मोक्ष
स्व-शरण !

कूट भाषा !

सोख ली
आकाश के
ब्लाटिंग पेपर ने
अंधेरे की
गीली स्याही
दिखने लगे स्पष्ट
समय की पाती पर
लिखे
नखत अक्षर,
हुये आश्वस्त
पढ़ कर
विरहिन धरती के
दीप नयन
लिखी थी
प्रवासी पति
सूरज ने
गूढ़ लिपि में
प्रत्यागमन की
सूचना !

परमहंस !

व्यवस्थित
स्व में जो
नहीं
उसके लिये
कोई
शब्द जन्य
विधान,
संवेदनामय
अनुकम्पा
चेतना की
पूर्णता का
बाह्याभास ।

महादानी !

डाल दिये
भिक्षुणी संध्या की
रिक्त झोली में
अम्बर ने
असंख्य नखतों के
रजत सिक्के,
बची रही केवल
अतःपुर की
समय गजदन्ती पर टके
गुलाबी अंगरखे की जेब में
सूर्य की एक
स्वर्ण मुद्रा !

पंच तत्व !

आबद्ध
काल धर्म से
अनिल
अनल
सलिल
भूतल,
मुक्त
केवल
क्षण के
सत्य से
महाकाश !

असंग !

नहीं
उपलब्धि
फल
केवल
निष्पत्ति
विकास के
क्रम की
त्याग देती
जिसे
सहज भाव से
बीज की
असंग चेतना !

अथ-इति !

होते ही
अन्वय
चिन्मय
मृण्मय
बन गया
समय वय
अपरिचय
परिचय
निश्चय
संशय
अक्षय
क्षय !

विस्मय !

आया
शीत
भीत
बसन्त
ओढ़े
कुहासे का कम्बल,
कहाँ
किसलय, कोंपल
कलियाँ, कोयल !
जोहता बाट
वातायन
अपलक
नहीं लौटा
परदेशी मलयानिल अब तक
हो गया
समय
कितना संवेदनहीन
कि
नहीं गुदगुदाती
उसे
पहली
मधुमासी भोर !

प्रश्न-उत्तर ।

हुआ है क्या
इच्छा से
जन्म ?
मिले हैं
चयनित
माता पिता ?
हैं मनोनुकूल
रंग, रूप
देह, वय
स्वभाव, स्थितियां ?
या
मात्र दुर्घटना
अस्तित्व ?
अव्यवस्था की उपज
तुम
चाहते
विचार के अनुसार
व्यवस्था
कितने असहाय
कितने दयनीय ?
नहीं क्या
तुम्हारे स्व की
कोई अस्मिता ?
चाहते
अगर समाधान,
लौटो
चेतना के उस स्तर पर

जहां
देगी
अभिव्यक्ति जनित
इन प्रश्नों का
सटीक उत्तर
विदेह
अनुभूति ।

अदीठ !

झरता
निरन्तर
अम्बर
हिमगिरि से
समय निर्झर,
समेटे
बाहों में इसे
जन्म मरण के
द्वय कूल,
मिलती
किस अनदेखे सागर में
अलख धार !
नहीं खोज पाया
आज तक
भोर से सांझ तक
भटकता
प्यासा बनजारा
सूरज !

स्वागत !

रहो
न कहो
सहो,

गहो
न बहो

दहो,
सूरज तुम
दहो !

स्वीकारोक्ति !

नहीं होगी
कभी उऋण
सृजन धर्मी चेतना
समाज से
की जिसने नियंत्रित
बिना किये
पिंजड़े में बन्द
मानव-पशु की
उद्दाम वासनाएं,
रचे
सामूहिक भय ने
सापेक्षित जीवन मूल्य
किया
जिन्होंने बाध्य
स्वीकारने के लिये
सह अस्तित्व का
मूलभूत अनुबन्ध !

विराम !

मान कर
भय को
विवेक का,
प्रेम को
वासना का,
घृणा को
अनासक्ति का,
पर्याय वाची
नकार दिया गया
उन
अन्तरमुखी जीवन मूल्यों को
जिन्हें
कर सकती
अनुभूत केवल
दैहिक कुंठाओं से
मुक्त
निरपेक्ष चेतना !

व्यक्ति-भीड़ !

रहती
व्यक्ति के मुखौटे में
छिपी
वासनाओं की
एक अनियन्त्रित भीड़
जो नहीं रहने देती
उसे
अपने में उपस्थित,
करता रहता
आतुर मन
प्रति क्षण
लक्ष्मण रेखा का
अतिक्रमण,
नहीं जानता
वह अबोध
कर रही
अराजकता
दबे पाँव
उसका
अनुसरण ।

सार्थक क्षण !

जनमते हैं
प्रतिकूल
परिस्थितियों की
कोख से ही
सार्थक क्षण
जो
देते हैं
विजड़ित
चेतना को
दिशा बोध,
तोड़ते हैं
अवरोध
बद्ध हुई
सृजन की गंगा का
जिसे ले आया था
शिव के जटाजूट से
शुरू कर
हन का पुरखा
समय का भगीरथ ।

समस्या !

नहीं
निकलती
अचानक
सांप की तरह
किसी विवर से
कोई समस्या ।
नहीं कोई
किसी सपेरे की बीन
उसका निदान ।
यह तो
आदमी की
क्षमता की उपज,
पशु से अधिक
उसकी समझ
यह बोध
हर समस्या का मूल,
समाधान
उस का फूल
जिसके
मधु कोष में हैं
फिर
अनगिन समस्याओं के बीज !

मृत्तिका !

किस ने
किया
इस सजीवनी
मिट्टी को
मृत्तिका की संज्ञा से
अभिमंडित !
यह भूति
स्वयं सिद्धा
विभूति,
इसी के
माध्यम से
परिभाषित
सृजन का सत्य,
विसर्जन का शिवम्,
सुन्दरम् की अभिव्यक्ति !

पेड़ ।

नही करता
कभी कोई
मंजिल की कामना
सड़क के किनारे खड़ा
यह पेड़,
ठहरते हैं
इसकी छाया में
आधुनिकतम वाहन
नही ललचाती
कभी उसे
गद्देदार सीटें
रंगीन
खिड़कियां
क्यों कि वह जानता है
कहीं नहीं ले जाती
इन भटके हुये
लोगों को
कोई भी यात्रा ।

देह-निषंग !

प्राण-धनुष पर
चढ़ी आयु-ज्या
सतत् मास
शर वर्षण,
वेध लक्ष्य
फेंकेगा अन्तक
देह-निषंग
उसी क्षण।

सम्बोधि !

शूल नहीं चुभते तो मुझ को
फूलों से अनुराग न होता ।

दिया मुझे तम ने ही चिन्तन
मैं मिट्टी का दीप बनाऊँ,
अनबोली पीड़ा का इंगित
अनहद को छन्दों में गाऊँ,
बिना हुये कटु-मधु का अनुभव
कोई राग विराग न होता ?

है अनिवार्य यहाँ पर अन्वय
यह जीवन मूल्यों का मेला,
वही सफल जिस ने अभिनय को
केवल खेल समझ कर खेला,
द्वन्द्व भीत रण विमुख पार्थ का
दैन्य ज्ञानमय त्याग न होता ।

निर्गुण सत्य किन्तु साथ ही
सत्य प्रकृति की निर्गुण सत्ता,
बिना नियति को भोगे छूटे
ऐसी किस चेतन में क्षमता ?
प्रेम योगिनी मीरा उसका
खंडित कभी सुहाग न होता ।

सन्दर्भ !

तोड कर
मौन की शिला
तराशती है
चेतना
सन्दर्भ की छेनी से
सार्थक शब्द
होता
उन्ही के माध्यम से
व्यक्त
सम्प्रेषण का सत्य !

शहर-गांव !

आ गया
शहर मदारी की
पकड़ में
गाव बन्दर,
देख उसे
किकियाते
रिरियाते
धर दिया
रंगीन एनक
आखो पर
बदल गया
हरियाले खेतो में
पाषाणी बजर
ठगा गया
बेचारा
बधुआ खेतिहर।

अमृत-रस !

कहाँ है
इतिहास की
मृत घटनाओं में
पौराणिक गाथाओं का
अमृत रस ?
नहीं है
केवल तलवार भांजने वाले
सम्राटों के
चतुर्दिक
ऐसा कोई प्रभा मंडल
जो कर देता हो
अतम की चेतना को
चमत्कृत !
यह तो हैं
मिथकीय पात्रों के
व्यक्तित्व का अप्रतिम तेजस्
जिस की छुअन मात्र से
हो उठता है सहसा प्रदीप्त
जातीय जीवन का
निष्प्रभ होता दीप !

सत्य !

छोड़ कर
किस के भरोसे
निरीह बच्चे
उड़ जाती चिड़िया
दाना चुगने ?

रखकर
किस की सुरक्षा में
नवजात शावक
चली जाती शेरनी
शिकार करने ?

नहीं झेल पाती
ममता
निर्मम भूख की
चुनौती !

आत्मा !

तोड़ लिया
अधखिला फूल,
चुभ गया
नीचे पड़ा शूल,
निकल आई
रक्त की बूंद
थी जिसमें प्रतिबिम्बित
मृत गुलाब की
आत्मा !

अनुभूति !

समय
एक
अनुभूति
व्यक्त करती जिसे
भावुक स्रष्टाएं
लिख कर
दिवस के पन्ने पर
रात की स्याही से
तारों के अक्षरों में
नैसर्गिक कविताएँ
गाते सस्वर जिन्हें
मयूर, चातक,
कोकिल मधुकर
ध्वनित धरती
प्रतिध्वनित अम्बर !

कृतघ्न ।

हर प्रवाह के साथ रहेगा
निश्चित ही तट,
हर पथ देता खोल नयन
सुन पग की आहट,
जड़ का सहज स्वभाव
प्रगति का साथ निभाता,
चेतन किन्तु कृतघ्न
तोड़कर जाता नाता ।

परमेश्वर !

देता
आकाश
हर पांख को
निमंत्रण
पर
नहीं देता
शरण ।

बाज हो
या कबूतर
सब को
उड़ान का
सम अवसर,

पहुँच कर
ऊपर
करेगा क्या
कोई
यह दृष्टि पर
निर्भर ।

संवेदना का सत्य !

टप जाते
होते सांझ
बन कर
सितारे
धरती के सारे आंसू
आकाश में,

बिखर जाती
होते भोर
बन कर धूप
आकाश की सारी जलन
धरती पर,

यही है
संवेदना का सत्य
जो नहीं
बिगड़ने देता
सृष्टि का
सन्तुलन !

विडम्बना !

बिना हुये
प्रतिक्रियाओं से
मुक्त
कैसे अनुभव करेगा
मन
क्रिया की सत्ता ?
नाचता रहेगा
बंध कर
विभाव के धागे से
कठपुतली की तरह,
रह जायेगा
बन कर
मात्र दृश्य वह
जो है
स्वयं द्रष्टा !

दुर्घटनाएं !
बैठी रहती
दम साध कर
ताक में
मक्कार दुर्घटनाएं,
नहीं दिखती
बेचारे शिकार को
घटने से पहले,
पहने रहती
चेहरों पर
किसिम किसिम के
मुखौटे
होते ही हादसा
खो जाती
लम्हे भर में
तहलके के जंगल में,
नहीं उभरते
आकाश की छाती पर
इन कजाओं के
खूनी पंजों के निशान !

समुद्र !

बरसाते
आत्मज मेघ
पीयूष,
भर देती
तट की नमी
कठोर नारियल में
मधु नीर,

सुना है
पी लिया था
शिव ने गरल
पर नहीं बदला
स्वभाव
रहे खारे के खारे

रह जाते
ललक कर
अंजुरि भर
जल के लिये
तृषित बेचारे।

डुबो डुबो
चचु
चुगते
मछलियाँ
भूखे जल पंछी
बुझाते
उदर की ज्वाला

पर नहीं बुझा पाते
अधर की प्यास,
कैसी विडम्बना !

उपेक्षिता !

फूले
नयनों की नीरव
घाटियों में
यादों के अनगिन
हर सिंगार,
चू पड़ते
संवेदना के
धीमे से सस्पर्श से
उजले अश्रु-सुमन,

काश ! कोन इन्हें
गूंथ पाती
किसी की सुकुमार अंगुलियां
एक दिव्य हार
तो उतर आता
ललक कर,
स्वर्ण सिंहासन पर बैठा
निष्ठुरता का राजकुमार
लेने के लिये
यह अनमोल उपहार,
हो जाते उसी क्षण मुखर
किसी उपेक्षिता के
गूंगे गृह-द्वार !